Bharat Bharti Maithilisharan Gupt

https://www.gkexams.com/ask/38995-Bharat-Bharti-Book-PDF

भारत-भारती मैथिलीशरण गुप्त

1. अतीत खण्ड

मंगलाचरण

मानस भवन में आर्य्जन जिसकी उतारें आरती-

भगवान् ! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।

हो भद्रभावोद्भाविनी वह भारती हे भवगते !

सीतापते। सीतापते !! गीतामते! गीतामते !!।।१।।

2. उपक्रमणिका

हाँ, लेखनी ! हृत्पत्र पर लिखनी तुझे है यह कथा,

दृक्कालिमा में डूबकर तैयार होकर सर्वथा।

स्वच्छन्दता से कर तुझे करने पड़ें प्रस्ताव जो,

जग जायें तेरी नोंक से सोये हुए हों भाव जो।।।२।।

संसार में किसका समय है एक सा रहता सदा,

हैं निशि दिवा सी घूमती सर्वत्र विपदा-सम्पदा।

जो आज एक अनाथ है, नरनाथ कल होता वही;

जो आज उत्सव मग्र है, कल शोक से रोता वही।।३।।

चर्चा हमारी भी कभी संसार में सर्वत्र थी,

वह सद्गुणों की कीर्ति मानो एक और कलत्र थी ।

इस दुर्दशा का स्वप्न में भी क्या हमें कुछ ध्यान था?

क्या इस पतन ही को हमारा वह अतुल उत्थान था?।।४।।

उन्नत रहा होगा कभी जो हो रहा अवनत अभी,

जो हो रहा उन्नत अभी, अवनत रहा होगा कभी ।
हँसते प्रथम जो पद्म हैं, तम-पंक में फँसते वही,
मुरझे पड़े रहते कुमुद जो अन्त में हँसते वही ।।५।।

उन्नति तथा अवनति प्रकृति का नियम एक अखण्ड है,
चढ़ता प्रथम जो व्योम में गिरता वही मार्तण्ड है ।
अतएव अवनति ही हमारी कह रही उन्नति-कला,
उत्थान ही जिसका नहीं उसका पतन ही क्या भला?।।६।।

होता समुन्नति के अनन्तर सोच अवनति का नहीं,
हाँ, सोच तो है जो किसी की फिर न हो उन्नति कहीं ।
चिन्ता नहीं जो व्योम-विस्तृत चन्द्रिका का ह्रास हो,
चिन्ता तभी है जब न उसका फिर नवीन विकास हो।।७।।

है ठीक ऐसी ही दशा हत-भाग्य भारतवर्ष की,
कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की ।
पर सोच है केवल यही वह नित्य गिरता ही गया,
जब से फिरा है दैव इससे, नित्य फिरता ही गया।।८।।

यह नियम है, उद्यान में पककर गिरे पत्ते जहाँ,
प्रकटित हुए पीछे उन्हीं के लहलहे पल्लव वहाँ ।
पर हाय! इस उद्यान का कुछ दूसरा ही हाल है,
पतझड़ कहें या सूखना, कायापलट या काल है?।।९।।

अनुकूल शोभा-मूल सुरभित फूल वे कुम्हला गए,
फलते कहाँ हैं अब यहाँ वे फल रसाल नये-नये?

बस, इस विशालोद्यान में अब झाड़ या झंखाड़ हैं,
तनु सूखकर काँटा हुआ, बस शेष हैं तो हाड़ हैं।।१०।।

दृढ़-दुःख दावानल इसे सब ओर घेर जला रहा,
तिस पर अदृष्टाकाश उलटा विपद-वज्र चला रहा ।
यद्यपि बुझा सकता हमारा नेत्र-जल इस आग को,
पर धिक्! हमारे स्वार्थमय सूखे हुए अनुराग को।।११।।

सहदय जनों के चित्त निर्मल कुड़क जाकर काँच-से-
होते दया के वश द्रवित हैं तप्त हो इस आँच से ।
चिन्ता कभी भावी दशा की, वर्त्तमान व्यथा कभी-
करती तथा चंचल उन्हें है भूतकाल-कथा कभी।।१२।।

जो इस विषय पर आज कुछ कहने चले हैं हम यहाँ,
क्या कुछ सजग होंगे सखे! उसको सुनेंगे जो जहाँ?
कवि के कठिनतर कर्म की करते नहीं हम धृष्टता,
पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता?।।१३।।

हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी ।
यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं,
हम कौन थे, इस ज्ञान का, फिर भी अधूरा है नहीं।।१४।।

3. भारतवर्ष की श्रेष्ठता

भू-लोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ ?
फैला मनोहर गिरी हिमालय और गंगाजल जहाँ ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है,

उसका कि जो ऋषिभूमि है, वह कौन ? भारत वर्ष है।।१५।।

हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भण्डार है,
विधि ने किया नर-सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।।१६।।

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी 'आर्य्य' हैं;
विद्या, कला-कौशल्य सबके, जो प्रथम आचार्य्य हैं ।
संतान उनकी आज यद्यपि, हम अधोगति में पड़े;
पर चिन्ह उनकी उच्चता के, आज भी कुछ हैं खड़े।।१७।।

4. हमारा उद्भव

शुभ शान्तिमय शोभा जहाँ भव-बन्धनों को खोलती,
हिल-मिल मृगों से खेल करती सिंहनी थी डोलती!
स्वर्गीय भावों से भरे ऋषि होम करते थे जहाँ,
उन ऋषिगणों से ही हमारा था हुआ उद्भव यहाँ।।१८।।

5. हमारे पूर्वज

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है,
गाते नहीं उनके हमीं गुण गा रहा संसार है ।
वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे,
उनसे वही गम्भीर थे, वरवीर थे, ध्रुव धीर थे।।१९।।

उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था,
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था ।
उपदेश उनके शान्तिकारक थे निवारक शोक के,

सब लोक उनका भक्त था, वे थे हितैषी लोक के।।२०।।

लखते न अघ की ओर थे वे, अघ न लखता था उन्हें,
वे धर्म्म को रखते सदा थे, धर्म्म रखता था उन्हें !
वे कर्म्म से ही कर्म्म का थे नाश करना जानते,
करते वही थे वे जिसे कर्त्तव्य थे वे मानते।।२१।।

वे सजग रहते थे सदा दुख-पूर्ण तृष्णा-भ्रान्ति से ।
जीवन बिताते थे सदा सन्तोष-पूर्वक शान्ति से ।
इस लोक में उस लोक से वे अल्प सुख पाते न थे,
हँसते हुए आते न थे, रोते हुए जाते न थे।।२२।।

जिनकी अपूर्व सुगन्धि से इन्द्रिय-मधुपगण थे हिले,
सद्भाव सरसिज वर जहाँ पर नित्य रहते थे खिले ।
लहरें उठाने में जहाँ व्यवहार-मारुत लग्न था,
उन्मत्त आत्मा-हंस उनके मानसों में मग्न था।।२३।।

वे ईश-नियमों की कभी अवहेलना करते न थे,
सन्मार्ग में चलते हुए वे विघ्न से डरते न थे ।
अपने लिए वे दूसरों का हित कभी हरते न थे,
चिन्ता-प्रपूर्ण अशान्तिपूर्वक वे कभी मरते न थे।।२४।।

वे मोह-बन्धन-मुक्त थे, स्वच्छन्द थे, स्वाधीन थे;
सम्पूर्ण सुख-संयुक्त थे, वे शान्ति-शिखरासीन थे ।
मन से, वचन से, कर्म्म से वे प्रभु-भजन में लीन थे,
विख्यात ब्रह्मानन्द - नद के वे मनोहर मीन थे।।२५।।

उनके चतुर्दिक-कीर्ति-पट को है असम्भव नापना,

की दूर देशों में उन्होंने उपनिवेश-स्थापना ।

पहुँचे जहाँ वे अज्ञता का द्वार जानो रुक गया,

वे झुक गये जिस ओर को संसार मानो झुक गया।।२६।।

वर्णन उन्होंने जिस विषय का है किया, पूरा किया;

मानो प्रकृति ने ही स्वयं साहित्य उनका रच दिया ।

चाहे समय की गति कभी अनुकूल उनके हो नहीं,

हैं किन्तु निश्चल एक-से सिद्धान्त उनके सब कहीं।।२७।।

वे मेदिनी-तल में सुकृत के बीज बोते थे सदा,

परदुःख देख दयालुता से द्रवित होते थे सदा ।

वे सत्वगुण-शुभ्रांशु से तम-ताप खोते थे सदा,

निश्चिन्त विघ्न-विहीन सुख की नींद सोते थे सदा।।२८।।

वे आर्य ही थे जो कभी अपने लिए जीते न थे;

वे स्वार्थ-रत हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे ।

संसार के उपकार-हित जब जन्म लेते थे सभी,

निश्चेष्ट होकर किस तरह वे बैठ सकते थे कभी?।।२९।।

6. आदर्श

आदर्श जन संसार में इतने कहाँ पर हैं हुए ?

सत्कार्य्य-भूषण आर्य्यगण जितने यहाँ पर हैं हुए ।

हैं रह गये यद्यपि हमारे गीत आज रहे सहे ।

पर दूसरों के भी वचन साक्षी हमारे हो रहे।।३०।।

गौतम, वशिष्ट-ममान मुनिवर ज्ञान-दायक थे यहाँ,

मनु, याज्ञवल्कय-समान सत्तम विधि- विधायक थे यहाँ ।

वाल्मीकि-वेदव्यास-से गुण-गान-गायक ये यहाँ,

पृथु, पुरु, भरत, रघु-से अलौकिक लोक-नायक थे यहाँ ।।३१।।

लक्ष्मी नहीं, सर्वस्व जावे, सत्य छोड़ेंगे नहीं;

अन्धे बने पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं।

निज सुत-मरण स्वीकार है पर बचन की रक्षा रहे,

है कौन जो उन पूर्वजों के शील की सीमा कहे?।।३२।।

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे,

अपने अतिथि-सत्कार में फिर भी न जो रूखे रहे !

पर-तृप्ति कर निज तृप्ति मानी रन्तिदेव नरेश ने,

ऐसे अतिथि-सन्तोष-कर पैदा किये किस देश ने ?।।३३।।

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन-भक्षण के लिए,

जो बिक गये चाण्डाल के घर सत्य-रक्षण के लिए !

दे दीं जिन्होंने अस्थियाँ परमार्थ-हित जानी जहाँ,

शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि-से होते रहे दानी यहाँ।।३४।।

सत्पुत्र पुरु-से थे जिन्होंने तात-हित सब कुछ सहा,

भाई भरत-से थे जिन्होंने राज्य भी त्यागा अहा !

जो धीरता के, वीरता के प्रौढ़तम पालक हुए,

प्रहलाद, ध्रुव, कुश, लब तथा अभिमन्यु-सम बालक हुए ।।३५।।

वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन, उनकी धरा-सी धीरता,

वह शील उनका और उनकी वीरता, गम्भीरता,

उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता,

है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता।।३६।।

वर वीरता में भी सरसता वास करती थी यहाँ,

पर साथ ही वह आत्म-संयम था यहाँ का-सा कहाँ ?

आकर करे रति-याचना जो उर्वशी-सी भामिनी,

फिर कौन ऐसा है, कहे जो, "मत कहो यों कामिनी"।।३७।।

यदि भूलकर अनुचित किसी ने काम का डाला कभी,

तो वह स्वयं नृप के निकट दण्डार्थ जाता था तभी ।

अब भी 'लिखित मुनि' का चरित वह लिखित है इतिहास में,

अनुपम सुजनता सिद्ध है जिसके अमल आभास में।।३८।।

7. आर्य-स्त्रियाँ

केवल पुरुष ही थे न वे जिनका जगत को गर्व था,

गृह-देवियाँ भी थीं हमारी देवियाँ ही सर्वथा ।

था अत्रि-अनुसूया-सदृश गार्हस्थ्य दुर्लभ स्वर्ग में,

दाम्पत्य में वह सौख्य था जो सौख्य था अपवर्ग में।।३९।।

निज स्वामियों के कार्य में सम भाग जो लेती न वे,

अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देती न वे ।

तो फिर कहातीं किस तरह 'अर्द्धांगिनी' सुकुमारियाँ ?

तात्पर्य यह-अनुरूप ही थीं नरवरों के नारियाँ।।४०।।

हारे मनोहत पुत्र को फिर बल जिन्होंने था दिया,

रहते जिन्होंने नववधू के सुत-विरह स्वीकृत किया ।

द्विज-पुत्र-रक्षा-हित जिन्होंने सुत-मरण सोचा नहीं,

विदुला, सुमित्रा और कुन्तो-तुल्य माताएँ रहीं।।४१।।

बदली न जा, अल्पायु वर भी वर लिया सो वर लिया;

मुनि को सता कर भूल से, जिसने उचित प्रतिफल दिया ।

सेवार्थ जिसने रोगियों के था विराम लिया नहीं,

थीं धन्य सावित्री, सुकन्या और अंशुमती यहीं।।४२।।

मूँदे रही दोनों नयन आमरण 'गान्धारी जहाँ,

पति-संग 'दमयन्ती' स्वयं बन बन फिरीं मारी जहाँ ।

यों ही जहाँ की नारियों ने धर्म्म का पालन किया,

आश्चरर्य क्या फिर ईश ने जो दिव्य-बल उनको दिया।।४३।।

अबला जनों का आत्म-बल संसार में था वह नया,

चाहा उन्होंने तो अधिक क्या, रवि-उदय भी रुक गया !

जिस क्षुब्ध मुनि की दृष्टि से जलकर विहग भू पर गिरा,

वह भी सती के तेज-सम्मुख रह गया निष्प्रभ निरा !।।४४।।

8. हमारी सभ्यता

शैशव-दशा में देश प्राय: जिस समय सब व्याप्त थे,

निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे ।

संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-भिक्षा दान की,

आचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की।।४५।।

'हाँ' और 'ना' भी अन्य जन करना न जब थे जानते,

थे ईश के आदेश तब हम वेदमंत्र बखानते ।

जब थे दिगम्बर रूप में वे जंगलों में घूमते,

प्रासाद-केतन-पट हमारे चन्द्र को थे चूसते।।४६।।

जब मांस-भक्षण पर वनों में अन्य जन थे जी रहे,
कृषिकी कार्य्य करके आर्य्य तब शुचि सोमरस थे पी रहे ।
मिलता न यह सात्विक सु-भोजन यदि शुभाविष्कार का,
तो पार क्या रहता जगत में उस विकृत व्यापार का ?।।४७।।

था गर्व नित्य निजस्व का पर दम्भ से हम दूर थे,
थे धर्म्म-भीरु परन्तु हम सब काल सच्चे शूर थे ।
सब लोकसुख हम भोगते थे बान्धवों के साथ में,
पर पारलौकिक-सिद्धि भी रखते सदा थे हाथ में।।४८।।

थे ज्यों समुन्नति के सुखद उत्तुंग शृंगों पर चढ़े,
त्यों ही विशुद्ध विनीतता में हम सभी से थे बढ़े ।
भव-सिन्धु तरने के लिए आत्मावलम्बी धीर ज्यों,
परमार्थ-साध्य-हेतु थे आतुर परन्तु गम्भीर त्यों।।४९।।

यद्यपि सदा परमार्थ ही में स्वार्थ थे हम मानते,
पर कर्म्म से फल-कामना करना न हम थे जानते ।
विख्यात जीवन-व्रत हमारा लोक-हित एकान्त था,
'आत्मा अमर है, देह नश्वर,' यह अटल सिद्धान्त था।।५०।।

हम दूसरों के दुःख को थे दुःख अपना मानते,
हम मानते कैसे नहीं, जब थे सदा यह जानते-
'जो ईश कर्त्ता है हमारा दूसरों का भी वही,
है कर्म्म भिन्न परन्तु सबमें तत्व-समता हो रही'।।५१।।

बिकते गुलाम न थे यहाँ हममें न ऐसी रीति थो,

सेवक-जनों पर भी हमारी नित्य रहती प्रीति थी ।

वह नीति ऐसी थी कि चाहे हम कभी भूखे रहें,

पर बात क्या, जीते हमारे जो कभी वे दुख सहें?।।५२।।

अपने लिए भी आज हम क्यों जी न सकते हों यहाँ,

पर दूसरों के ही लिए जीते जहाँ थे हम जहाँ;

यद्यपि जगत् में हम स्वयं विख्यात जीवन- मुक्त थे,

करते तदपि जीवन्मृतों को दिव्य जीवन-युक्त थे ।।५३।।

कहते नहीं थे किन्तु हम करके दिखाते थे सदा।

नीचे गिरे को प्रेम से ऊंचा चढ़ाते थे हमीं,

पीछे रहे को घूमकर आगे बढ़ाते थे हमीं ।।५४।।

होकर गृही फिर लोक की कर्त्तव्य-रीति समाप्त की।

हम अन्त में भव-बन्धनों को थे सदा को तोड़ते,

आदर्श भावी सृष्टिहित थे मुक्ति-पथ में छोड़ते ।।५५।।

कोई रहस्य छिपे न थे पृथ्वी तथा आकाश के।

थे जो हजारों वर्ष पहले जिस तरह हमने कहे,

विज्ञान-वेत्ता अब वही सिद्धान्त निश्चित का रहे ।।५६।।

"है हानिकारक नीति निश्चिय निकट कुल में ब्याह की,

है लाभकारक रीति शव के गाड़ने से दाह की ।"

यूरोप के विद्वान भी अब इस तरह कहने लगे,

देखो कि उलटे स्रोत सीधे किस तरह बहने लगे ! ।।५७।।

निज कार्य प्रभु की प्रेरणा ही थे नहीं हम जानते,
प्रत्युत उसे प्रभु का किया ही थे सदा हम मानते।
भय था हमें तो बस उसी का और हम किससे डरे?
हाँ, जब मरे हम तब उसी के पेम से विह्वल मरे ।।५८।।
था कौन ईश्वर के सिवा जिसको हमारा सिर झुके ?
हाँ, कौन ऐसा स्थान था जिसमें हमारी गति रुके ?
सारी धरा तो थी धरा ही, सिन्धु भी बँधवा दिया;
आकाश में भी आत्म-बल से सहज ही विचरण किया' ।।५९।।

हम बाह्य उन्नति पर कभी मरते न थे संसार में,
बस मग्न थे अन्तर्जगत के अमृत-पारावार में।
जड़ से हमें क्या, जब कि हम थे नित्य चेतन से मिले,
हैं दीप उनके निकट क्या जो पद्म दिनकर से खिले ? ।।६०।।

रौदी हुई है सब हमारी भूमि इस संसार की,
फैला दिया व्यापार, कर दी धूम धर्म-प्रचार की ।
कप्तान 'कोलम्बस' कहाँ था उस समय, कोई कहे?
जब के सुचिन्ह अमेरिका में हैं हमारे मिल रहे ।।६१।।